भारतीय संस्कृति में नैतिकता

डॉ0 सुषमा जोशी*

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम् संस्कृतियों की सिरमौर है। हमारे समाज को यह संस्कृति एक गौरवशाली सांस्कृतिक धरोहर के रूप में प्राप्त है। भारतीय संस्कृति का वैशिष्ट्य इसकी परिष्कारवादी विधि में देखा जा सकता है। यह ऐसी सामूहिक जीवन प्रणाली है, जो प्रकृति प्रदत्त पदार्थों को निरन्तर संस्कारपूर्वक सर्वश्रेष्ठ रूप में प्राप्त करने का प्रयास करती रही है।

भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से ही नैतिकता सम्बन्धी समस्त गुण विद्यमान थे। संस्कृति के मुख्य आदर्श में ही मानव मूल्यों को प्रमुखता दी गई है। सुख प्राप्ति हेतु मनुष्य के लिये बौद्धिक एवं नैतिक गुणों के समन्वय को आवश्यक बताया गया है। नैतिकतापूर्ण आचरण के बिना मनुष्य का जीवन व्यर्थ है। नैतिक मूल्य ही हमारे व्यवहार को तथा मानवीय कार्यों को दिशा प्रदान करते हैं। वास्तव में नैतिकता मूल्य की संपूरक ही है। जैसे साधन के विना साध्य को प्राप्त करना दुष्कर है उसी प्रकार नैतिक आचरण के बिना मूल्य चर्चा भी निरर्थक मानी जाती है। नैतिक आचरण न केवल किसी व्यक्ति का आत्म कल्याण ही करता है वरन् वह विश्व कल्याण में भी अपना सहयोग देता है, क्योंकि व्यक्ति विश्व की ही तो एक इकाई है। नैतिकता चाहे किसी भी धरातल की हो यानि व्यक्ति स्तर की नैतिकता, समाज स्तर की, राष्ट्र स्तर की अथवा विश्व स्तर की, वह मानव के चतुर्दिक कल्याण में सहायक होती है। प्रारम्भ से ही हमारे मनीषियों का यह विश्वास था कि नैतिकतापूर्ण आचरण मनुष्य को पशु के धरातल से उपर उठायेगा, व्यक्ति का व्यक्ति के साथ सम्बन्ध दृढ़ करेगा। नैतिकता से वंचित बौद्धिक विकास अन्ततोगत्वा अव्यवस्था तथा विनाश के साम्राज्य को आमंत्रित करेगा, इसीलिये संम्भवतः हमारे धर्मग्रन्थों में निष्काम कर्म, त्याग, मानव सेवा को विशेष महत्व दिया गया है। आत्मबल की प्रतिष्ठा, साधुत्व की भावना, तप, परोपकार जैसे मूल्य सदैव से ही भारतीय संस्कृति की प्राण प्रतिष्ठा के रूप में रहे, शायद इसीलिये आज भी हमारी संस्कृति अविच्छिन्न रूप से आगे बढ़ रही है तथा बाहरी लोगों द्वारा भी अपनायी व सराही जा रही है।

भारतीय संस्कृति जिसकी जड़ें ऋग्वेद के मंत्रों में निहित हैं, उनके अन्तर्गत अनेक ऋचाओं में शान्ति एवं मानव कल्याण की भावना के विकास पर बल दिया गया है। ऋग्वेद के एक मंत्र में उद्घृत है–

शं नः सूर्य उरूचक्षा उदेतु।
शं नश्चतस्त्रः प्रदिशे भवन्तु।।

अर्थात अत्यन्त विस्तृत तेज से युक्त सूर्य का उदय हम सबके लिये शान्तिदायक हो। चारों दिशाएं हमारे लिये शान्ति देने वाली हों। ऋग्वेद के एक अन्य मंत्र में स्पष्ट है 'पुमान पुमांस परिपातु विश्वतः' अर्थात एक दूसरे की रक्षा और सहायता करना मनुष्य का प्रमुख कर्तव्य है। हमारी संस्कृति ने प्रारम्भ से ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के मार्ग को अपनाया और इस सिद्धान्त को अपनाते हुए नैतिकता सम्बन्धित समस्त गुणों को उसकी नींव पर रख आने वाली पीढ़ी के

* विभागाध्यक्ष, शिक्षा विभाग, वसन्त महिला महाविद्यालय, राजघाट, वाराणसी।

लिये आधार प्रस्तुत किया। नीति अथवा आचरण की शिक्षा प्रदान करना हमारे संस्कृत साहित्य ग्रन्थों की रचना का प्रधान या फिर गौण लक्ष्य रहा। महाभारत की विदुरनीति मूल्य शिक्षा का अक्षय कोष है, इसके अतिरिक्त समस्त भगवत्गीता करणीय कर्तव्यों का एक दस्तावेज है। रामायण, महाभारत सदृश ग्रथों के अतिरिक्त भर्तहरि का 'नीतिशतक' भी आचार की शिक्षा प्रदान करने वाले शास्त्रों में प्रमुख वाग्ड्मय है। संस्कृत वांग्ड्मय ऐसे सुभाषित एवं नीतिवचनों के संग्रहों से भरा पड़ा है। संस्कृत के सूक्त्यात्मक तथा उपदेशात्मक काव्य भी छात्रों को नैतिक शिक्षा प्रदान करने में सहायक देखे जा सकते हैं। संस्कृत लौकिक साहित्य में अपनी तरह का एक मात्र ग्रन्थ 'पंचतंत्र' है जो नैतिकता की शिक्षा देने में पूरी तरह से उत्कृष्ट माना जाता है। 'हितोपदेश' के अन्तर्गत भी छात्रों के कल्याण से सम्बन्धित उपदेशों का संकलन है। हमारे स्मृति ग्रन्थों में भी मनुष्य के लिये करणीय कर्तव्यों की ओर केवल संकेत ही नही दिया गया, वरन् उनके करने से होने वाले लाभों और न करने से होने वाली हानियों की ओर भी संकेत किया गया है। यही नहीं 'जातक कथाएं' बौद्ध परम्परा का एक ऐसा ग्रन्थ है जिसमें भगवान बुद्ध के पूर्व जन्मों की विभिन्न प्रेरक घटनाएं वर्णित हैं। अतएवं स्पष्ट है कि नैतिकता की शिक्षा प्रदान करना भारतीय संस्कृति का प्रमुख विचारणीय विषय रहा, फिर चाहे वह किसी भी माध्यम से जन–जन तक पहुँचाने का स्रोत बना हो।

भारतीय संस्कृति में नैतिकता आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत क्रमशः पालित पोषित हुई। ब्रह्मचर्य को गृहस्थ जीवन की पूर्व पीठिका स्वरूप समझा जाता था। यह विद्याध्ययन एवं आचरण सम्बन्धी नियमों के पालन का काल माना जाता था, नैतिकता सम्बन्धित समस्त विचारो का बीजारोपण यहीं से होता था। छात्र में सदसदविवेक जागृत कर उसे सदाचरण के लिये प्रेरित करना और धार्मिक परिवेश में उसके व्यक्तित्व का बहुमुखी विकास करना शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य था। गृहस्थ आश्रम में गृहस्थ नैतिकता सम्बन्धी ज्ञान को व्यवहार में लाने का भरपूर प्रयास करता था। वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम में नैतिकतापूर्ण आचरण उसके मोक्ष प्राप्ति के मार्ग में सहायक माना जाता था, इसीलिये हमारी भारतीय परम्परा के अन्तर्गत, शिक्षा को 'सा विद्या या विमुक्तये'– अर्थात विद्या वह है जो मुक्ति प्रदान करे के रूप में स्वीकार किया गया। मुक्ति का तात्पर्य लौकिक व पारलौकिक दृष्टि से लिया जाता था। लौकिक दृष्टि से मुक्ति का तात्पर्य उस मनोवृत्ति से था जो व्यक्ति को संसार में रहते हुए सांसारिक ऐश्वर्य से दूर रहना सिखाये तथा पारलौकिक मुक्ति का **अभिप्राय** सद्कर्म करते हुए आवागमन के चक्र से मुक्ति पाना है।

भारतीय संस्कृति को उजागर करने वाले हमारे भारतीय दर्शन की यह मान्यता थी कि प्रत्येक जीव में ईश्वर का अंश है। इस तथ्य को प्रमुखता प्रदान करते हुए यह कामना की गई–

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्।।

समस्त प्राणियों के प्रति समानता का भाव ही करुणा तथा अहिंसा के भाव को विकसित करता है। भारतीय संस्कृति की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता यही 'करुणा' की भावना है। ऐसी भावना जो करुणा को विश्वबन्धुत्व के उत्कर्ष तक ले जाती है। करूणा एक स्थायी भाव है, जो उन लोगों के प्रति जागृत होती है जो उत्पीड़न का शिकार होकर दयनीय दशा को प्राप्त होते हैं।

हमारी संस्कृति सदैव से ही त्यागनिष्ठ रही, दूसरों के लिये अपने जीवन का त्याग करने की जो प्रवृत्ति हमारी संस्कृति में देखी जाती है वह किसी अन्य संस्कृति के लिये वरेण्य है और इसके आधार में करुणा ही है।

अशुभ को शुभ, अश्लील को श्लील, अमांगलिक को मांगलिक कहना भारतीय संस्कृति का अपना वैशिष्ट्य है। इसके मूल में यह भावना व्याप्त है कि हमें कभी भी अप्रिय वचन नही कहने चाहिए। मृत व्यक्ति को 'मरा हुआ' न कहकर उसे स्वर्गवासी कहने का यही रहस्य है। इसीलिये यह कहा जाता है कि सत्य होने पर भी कठोर मत बोलो। जैनागम में यह भी कहा गया है कि जो भाषा सत्य होकर भी बोलने योग्य न हो, सत्य और असत्य मिश्रित हो, असत्य हो या जिसका निषेध तीर्थंकरो ने किया हो, उस भाषा का प्रयोग प्रज्ञावन्त साधक को नही करना चाहिए।

भारतीय संस्कृति में सत्य और अहिंसा मानवीय नैतिकता के दो शीर्षबिन्दु माने गये हैं। यदि अहिंसा परम धर्म है तो सत्य परम तप। यह भी कहा गया है 'नास्ति सत्यसमो तपः (महाभारत) जैन धर्म का सार वाक्य ही है 'अहिंसा परमो धर्मः। वास्तव में मनसा, वाचा, कर्मणा किसी को क्षति न पहुँचाना ही अहिंसा है। सत्य के बाद अहिंसा ही संसार में बड़ी सक्रिय शक्ति है। अहिंसा के भावों को अन्दर से गढ़ा नही जाता, यह तो स्वतः उपजने वाला भाव है। यह एक श्रेष्ठ मानव धर्म है जो मनष्य को पशुता के धरातल से ऊपर उठाता है।

अहिंसा से ही जुड़ा हुआ 'सहिष्णुता' एक ऐसा नैतिक मूल्य है, जिससे मनुष्य की अनेक समस्याएँ बिना किसी परेशानी के हल हो जाती हैं। भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत सहिष्णुता के भाव को सदैव से ही सर्वोच्च स्थान दिया गया। 'सहिष्णुता' के भाव की गणना महाभारत के शान्तिपर्व में बताये गये 'सत्य' के तेरह रूपों में से एक प्रकार के रूप में की गई है।

'बहुजन हित या सर्वजनहित प्रारम्भ से ही भारतीय संस्कृति का मूलाधार रहा है। हमारी संस्कृति में नैतिकता के अन्तर्गत 'स्व' के लिये कोई स्थान नहीं है। 'स्व' की प्रवृत्ति व्यक्ति के दृष्टिकोण को संकुचित बना देती है। भारतीय संस्कृति के संरक्षण, संवर्धन में जितने भी धर्मो की भूमिका रही, सभी ने बहुजन के हित की बात को दोहराया। महाभारत के सूत्र के रूप में उल्लिखित मिलता है–

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनव्दयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।।

तुलसीदास जी का भी मानना था–

परहित सरिस धरम नहि भाई।
परपीड़ा सम नहिं अधमाई।।

यह परमार्थ का भाव भी तभी उदीप्त हो सकेगा जब व्यक्ति के स्वभाव में नम्रता होगी या विनय भाव होगा। हमारे हिन्दी व संस्कृत साहित्य में विनय की महिमा का यशगान यत्र–तत्र मिलता है। यह विनम्रता ज्ञानवान व्यक्ति में सहजता से आती है। विनम्रता का भाव ही व्यक्ति के व्यक्तिव को निखारता है, उसमें सद्गुणों का विकास होता है।

इसी सम्बन्ध में श्लोक प्रसिद्ध है – 'विद्या ददाति विनयं, विनयाद्याति पात्रताम्'। विनयभाव एक ऐसा विशिष्ट नैतिक मूल्य है जो प्राचीन होते हुए भी सदैव नवीन रहेगा।

नैतिकता के आधार को मजबूती प्रदान करने वाला एक प्रमुख गुण 'उदारता' भी है। हमारी भारतीय संस्कृति अपने स्वरूप में ही इतनी उदार रही है कि इसके मूल में उदारता के गुण को समाविष्ट देखा जा सकता है। भारतीय संस्कृति ने इस उदारता का पाठ पूरे विश्व को पढाया। सत्यवादी हरिश्चन्द्र, कर्ण की उदारता सर्वविदित है। गाँधीजी का भी कहना था 'जो

आनन्द देने में है, वह लेने में नहीं। लेने वाला प्रायः बोझिल बना रहता है जब कि देने वाला उन्मुक्त एवं तरल।

हमारी संस्कृति में नैतिकता सम्बन्धी गुणों के अन्तर्गत कतर्व्यनिष्ठा को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। कर्तव्य के प्रति निष्ठा ही व्यक्ति को समाज में महत्वपूर्ण स्थान दिलाती है। कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति अपने काम में सदैव सफलता प्राप्त करता है। प्राचीन इतिहास इस बात का साक्षी है कि जितने भी महापुरुष हुए हैं, सभी ने इस मूलमंत्र को अपने जीवन में अपनाया।

भारतीय संस्कृति में निहित नैतिकता के संदर्भ में अन्ततः यह कहना उचित होगा कि नैतिकतापूर्ण आचरण सदैव से ही मानव जीवन को सार्थकता एवं श्रेष्ठता प्रदान करने में प्रमुख रहा है, किन्तु आज विज्ञान ने मनुष्य की विचारधारा को भौतिकता के उस छोर पर पहुँचा दिया है जहाँ निजी स्वार्थों की पूर्ति हेतु व्यक्ति अनैतिक आचरण को अपना रहा है। कर्तव्यपरायणता, ईमानदारी, भाईचारे की भावना, उदारता, सहनशीलता जैसे नैतिक गुणों का क्षरण हो रहा है। डॉ0 राधाकृष्णन का भी मानना था– 'आधुनिक मानव ने पक्षी की तरह उड़ना सीख लिया, सागर में मछली की तरह तैरना सीख लिया लेकिन पृथ्वी पर मनुष्य की भाँति चलना भूल गया''। ऐसी परिस्थितियों में समूचे शैक्षिक तंत्र के लिये नैतिकता को आधार बनाते हुए शिक्षा देना एक प्रश्नचिन्ह बनकर रह गया है।

अतएव वर्तमान में आवश्यकता इस बात की है कि हमारी आने वाली पीढ़ी भारतीय संस्कृति के विशिष्ट प्रतिपाद्य विषय 'नैतिकता' को समझे। हमारी संस्कृति की परम्परा 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः' को स्वीकार करते हुए, उसे जीवन में आचरित करने का प्रयास करे। स्वप्रेरणा एवं स्वानुभूति से नैतिक मूल्यों का अधिगम करे। डॉ0 रिकमेन ने इयरबुक ऑफ एजूकेशन में ठीक ही कहा है कि– नैतिकता के सम्बन्ध में छोटे रास्ते न तो छोटे होते हैं और न नैतिक। नैतिकता किसी में उपजाई नहीं जा सकती। यह तो अपने ढंग से तथा अपने समय से ही विकसित होती है। नैतिकता व्यवहार के किसी स्तर के अनुसार व्यवहार करना नहीं है, यह तो हमारे मस्तिष्क में स्थापित अच्छे सम्बन्ध की, जिन्हें हम सभी के व्यवहारों तथा कार्यों में देखते हैं, अभिव्यक्ति है।'' स्पष्ट है कि नैतिकतापूर्ण आचरण न केवल किसी व्यक्ति के कल्याण में ही सहायक होगा वरन् वह विश्व कल्याण में भी योगदान दे सकेगा। समता, बन्धुत्व, भ्रातृत्व, सर्वोदय, और सौहार्दपूर्ण वातावरण में ही यह विश्व मंगलमय श्रेय को प्राप्त कर सकता है। यही हमारी भारतीय संस्कृति को श्रेष्ठ प्रमाणित करने का मूल मंत्र है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

- ओड, एल के (1973): शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
- कृष्णमूर्ति, जे. (1979): शिक्षा एवं जीवन का महत्व, देव ज्योति प्रेस, वाराणसी।
- गुप्त, नत्थूलाल(1986): मानव मूल्यों की खोज, विश्वभारती प्रकाशन, सीताबर्डी, नागपुर ।
- शर्मा चतुर्वेदी, गिरधारी : वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।
- पाण्डेय, राजबली : भारतीय नीति का विकास, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।
- साहित्य परिचय, (1982): नैतिक शिक्षा विशेषांक, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
- सिंह, रामधारी : संस्कृति के चार अध्याय।
- शर्मा, हरिदत्त : अनुशासन और नैतिकता, ज्ञानद्वीप प्रकाशन, दिल्ली।